

कुम्भ-महापर्व और उसका माहात्म्य



श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य
श्री स्वामी भूमानन्द तीर्थ जी महाराज



व्यवस्थापक :—

दण्डी स्वामी भूमानन्द तीर्थ न्यास संस्थानम्
सप्तसरोवर मार्ग, हरिद्वार ।



—लेखक—

श्री वैद्यनाथ अग्निहोत्री



* श्री० *

कुम्भ - महापर्व और उसका माहात्म्य



सनातन सिद्धान्त के अनुसार परब्रह्मा, परमात्मा, अखण्ड, अनन्त है। वह ईश्वर, भगवान् आदि नामों से कहा जाता है। उसे प्राप्त करना परम पुरुषार्थ है। उसके प्राप्त करने के अनेक साधन हैं—तीर्थ-यात्रा, व्रत, गंगा-स्नान आदि। किन्तु इन सब से अधिक माहात्म्य 'कुम्भ-महापर्व' का है। कहा है :—

सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे कार्तिक्याञ्च त्रिपुष्करे ।

माघमासे प्रयागे च यः स्नायात्सोऽतिपुण्यवान् ॥

“—सूर्य-ग्रहण में कुरुक्षेत्र और कार्तिक मास में त्रिपुष्कर क्षेत्र में जो स्नान का फल होता है, उससे अति पुण्य माघ-मास में प्रयाग-स्नान से होता है।”

सहस्रे कार्तिके स्नानं माघे स्नानशतानि च ।

वैशाखे नर्मदास्नानं कुम्भस्नानेन तत्फलम् ॥

“—हजारों बार कार्तिक-मास में स्नान करने का, सैकड़ों बार माघ-मास में स्नान करने का और वैशाख में नर्मदा-स्नान का जो फल होता है, वह फल कुम्भ-स्नान के एक बार करने पर होता है।”

‘कुम्भ-महापर्व’ के स्नान से, पाप-ताप, दुःख-निवृत्ति तथा ईश्वर को प्राप्त करने की योग्यता आती है। ‘कुम्भ’ का अर्थ है—“कुं—कुत्सितम्, उम्भति—दूरयति” यानी जो कुत्सित—पापमय कुविचारों को दूर करे, वह ‘कुम्भ-पर्व’ है।

‘कुम्भ-महापर्व’ अनादि और ऐतिहासिक है। सृष्टि के आदि में सृष्टि-कर्ता भगवान् ब्रह्मा ने कश्यप, दक्ष आदि को मन के संकल्प से उत्पन्न किया। इन मानसिक पुत्रों से कहा—‘तुम लोग सृष्टि की वृद्धि करो’। दक्ष प्रजापति के अनेक कन्यायें थीं। उन्होंने कश्यप आदि प्रजापति के साथ उनका विवाह कर दिया। कश्यप के दिति तथा अदिति नाम की पत्नी थीं। दिति से दैत्य उत्पन्न हुये और अदिति से देवता। देवताओं को स्वर्ग का स्वामी और दैत्यों को पाताल का स्वामी बनाया। इससे दैत्य प्रसन्न न हुये, वह स्वर्ग का राज्य चाहते थे। दैत्यों ने तपस्या और भौतिक बल-एकत्रित कर, देवताओं से स्वर्ग का राज्य छीन लिया। देवता राज्य-भ्रष्ट होगये। वह भगवान् विष्णु की शरण-गये। भगवान् ने उन्हें उपाय बतलाया कि “दैत्यों से सन्धि करो और उन्हें साथ लेकर ‘अमृत’ के लिये समुद्र-मंथन करो”। देवताओं ने यही किया। दैत्य समुद्र-मंथन के लिये तैयार हो गये। सुमेरु पर्वत की मथानी और वासुकि नाग की रस्सी बनाई गई। स्वयं भगवान् कच्छप-रूप धारण कर, समुद्र में अपनी पीठ पर सुमेरु पर्वत को धारण किये थे। समुद्र-मंथन से अनेक वस्तुएँ निकलीं। उन्हें देवता और दैत्य लेते गये। फिर ‘अमृत-कुम्भ’ निकला। उसे देवता-दैत्य दोनों लेना चाहते थे। इस पर दोनों में विवाद हो गया। कोई ‘अमृत-कुम्भ’ लेता, उससे दूसरा छीनता।

इस प्रकार बारह दिव्य दिनों तक छीना-भपटी होती रही । देवताओं का एक दिन, मनुष्यों के एक वर्ष के बराबर होता है । अतः यह विवाद बारह वर्ष तक चला । इसमें निम्न श्लोक प्रमाण हैं—

विवादे काश्यपेयानां यत्र यत्रावनिस्थले ।
कलशोऽभ्यपतद्यत्र कुम्भपर्वस्तदुच्यते ॥

“—कश्यप-पुत्र देव-दानवों में ‘अमृत-कलश’ के विवाद में, जहाँ-जहाँ भूमि पर कलश रखा गया, वहाँ-वहाँ ‘कुम्भ-पर्व’ होता है ।”

चन्द्रः प्रसूतवणाद्रक्षां सूर्यो विष्फोटनाद्घौ ।
दैत्येभ्यश्च गुरु रक्षा सौरिर्देवेन्द्रजाद्भयात् ॥

“—देव-दानवों के युद्ध से ‘अमृत-कुम्भ’ की रक्षा चन्द्र, सूर्य, बृहस्पति और भगवान् विष्णु ने की यानी अमृत भूमि में गिर न पड़े, इसकी रक्षा चन्द्र ने की, कुम्भ के फूटने की रक्षा सूर्य ने की, दैत्यों से रक्षा गुरु ने और इन्द्र पुत्र जयन्त से रक्षा भगवान् ने की ।”

सूर्येन्दुगुरुसंयोगस्तद् राशौ यत्र वत्सरे ।
सुधाकुम्भ प्लवे भूमौ कुम्भो भवति नान्यथा ॥

“—जब भूमि में ‘सुधा-कुम्भ’ गिरा था, उस समय एक राशि में यानी जिस-जिस राशि में सूर्य, चन्द्र तथा गुरु का संयोग था, उसी प्रकार जिस वर्ष में यह योग होता है, तब कुम्भ-पर्व होता है, अन्य वर्ष में नहीं ।”

देवानां द्वादशाऽहोभिः मर्त्येद्वादशवत्सरेः ।
जायन्ते कुम्भपर्वाणि तथा द्वादशसंख्यया ॥

तत्राद्यनुत्तये नृणां चत्वारि भुवि भारते ।

अष्टौ लोकान्तरे प्रोक्ता देवैर्गम्या न चेतरैः ॥

“—देवों के बारह दिन के समान मनुष्यों के बारह वर्ष होते हैं । इसलिये ‘कुम्भ-पर्व’ भी बारह संख्या वाले होते हैं । उन बारह ‘कुम्भ-पर्व’ में प्रथम चार कुम्भ-पर्व मनुष्यों के पाप-नाश के लिये भारत-भूमि में होते हैं और आठ अन्य लोकों में कहे गये हैं । वहाँ देवता ही जा सकते हैं और कोई नहीं ।”

“भारत-भूमि में चार ‘कुम्भ-पर्व’ कहाँ-कहाँ होते हैं?” इसे बतलाते हैं—

पृथिव्यां कुम्भपर्वस्य चतुर्धा भेद उच्यते ।

चतुः स्थले निषदनात् सुधाकुम्भस्य भारते ॥

गंगाद्वारे प्रयागे च धारा गोदावरीतटे ।

कुम्भाख्यो यस्तु योगोऽयं प्रोच्यते शंकरादिभिः ॥

“—भारत-भूमि में अमृत-कुम्भ के रखने का या गिरने के चार स्थान हैं, अतः पृथिवी में कुम्भ-पर्व के चार भेद हैं । हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और गोदावरी-तट पर नासिक में कुम्भ-पर्व होते हैं । जो यह कुम्भ संज्ञक योग है, इसे भगवान् शंकर आदि ने स्वीकार कर, कहा है ।”

तान्येति यः पुमान् लोके सोऽमृतत्वाय कल्पते ।

देवा नमन्ति तत्रस्थान् यथा रंका घनाधिपान् ॥

अश्वमेघसहस्रेभ्यो वाजपेयशतादपि ।

पृथिवीदानलक्षाच्च कुम्भयोगो विशिष्यते ॥

“—जो लोग कुम्भ-पर्व पर स्नान करते हैं, वह देवलोकों को प्राप्त होते हैं और अमृतत्व-प्राप्त करने की योग्यता आ जाती है । जैसे निर्धन तथा धनवान सभी लोग आते हैं, वैसे ही देवता भी इस स्थान को नमस्कार करते हैं और भेष-बदल कर आते हैं । हजारों अश्वमेघयज्ञ, सैकड़ों वाजपेययज्ञ और लाखों बार पृथ्वी-दान से भी, कुम्भ-स्नान का फल विशेष होता है ।”

“यह कुम्भ-पर्व कहां-किस समय होते हैं?” इस जिज्ञासा पर बतलाया गया है—

पद्मिनीनायके मेघे कुम्भराशिगते गुरौ ।

गंगाद्वारे भवेद्योगः कुम्भकामा जदीत्तमाः ॥

मकरे च दिवानाथे वृषराशिस्थिते गुरो ।

प्रयागे कुम्भयोगोऽयं माघमासे विधुक्षये ॥

सिंहे गुरौ तथा सूर्ये सिंहे चैव दिशाकरे ।

तदाऽमायां स धारायां कुम्भो भवति मुक्तिदः ॥

कर्के गुरुस्थिता भानुश्चन्द्रश्चन्द्रक्षयो यदा ।

शोदावर्या तदा कुम्भी जायतेऽवनिमण्डले ॥

॥ “—जब मेष-राशि में सूर्य और कुम्भ-राशि में बृहस्पति हों,

तब पुण्यकाल संक्रान्ति के समय हरिद्वार में उत्तम 'कुम्भ' नामक योग होता है। मकर-राशि में सूर्य, वृष-राशि में स्थित बृहस्पति और माघमास की अमावस्या होने पर प्रयाग में यह 'कुम्भ'-योग होता है। जब सिंह-राशि में बृहस्पति, सिंह-राशि में सूर्य और चन्द्र भी सिंह-राशि में हों, अमावस्या-तिथि हो, तब उज्जैन में क्षिप्रान्त-तट पर मुक्ति-दाता कुम्भ होता है। जब कर्क-राशि में बृहस्पति और इसी में सूर्य तथा चन्द्रमा हों, अमावस्या-तिथि हो, तब भूमिमण्डल पर, गोदावरी-तट नासिक में कुम्भ होता है।"

गंगा जी का माहात्म्य

इस प्रकार एक-एक स्थान में, बारह वर्ष पर कुम्भ-योग आता है। इसमें समस्त देश के आस्तिक लोग स्नान, दान, कथा, सत्संग आदि से लाभ-प्राप्त करते हैं। इस अवसर पर साधु, संन्यासी, योगी, तपस्वी, भक्त आदि पर्वत तथा एकान्त-वासियों के दुर्लभ दर्शन भी होते हैं। चार कुम्भ-पर्व में दो कुम्भ-पर्व उत्तरीय भारत के उत्तर प्रदेश में होते हैं। प्रथम प्रसिद्ध स्थान है हरिद्वार और दूसरा प्रयाग दोनों स्थानों में पाप-ताप-हारिणी श्री गंगा जी में स्नान होता है। गंगा जी साक्षात् ब्रह्म-द्रव-स्वरूपिणी हैं। इसमें श्रद्धापूर्वक शास्त्रोक्त विधि से स्नान करना चाहिये। महाभारत में कहा है :

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।

विद्या तपश्च योनिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥

“—जिसके हाथ-पैर चञ्चल न हों, इन्द्रियां तथा मन अच्छी प्रकार अपने वश में हो और जो शास्त्र-विद्या में विश्वास रखता हो, तीर्थ-प्राप्ति के लिये शारीरिक कष्ट उठाता हो एवं सचरित्र माता-पिता का पुत्र हो, वह तीर्थ का पूर्ण फल-प्राप्त करता है ।” गंगा-तट पर चौदह कार्य नहीं करना चाहिये :

गंगा पुण्यजलां प्राप्य चतुर्दश विवर्जयेत् ।

शौचमाचमनं केशं निर्माल्यमघमर्पणम् ॥

गात्रसंवाहनं क्रीडां प्रतिग्रहमथो रतिम् ।

अन्यतीर्थरतिं चैव अन्यतीर्थप्रशंसनम् ॥

वस्त्रत्यागमथाघातं संतारं च विशेषतः ।

(प्रायश्चित्त-तत्त्व १।५३५)

“—पुण्यसलिला श्री गंगा जी के समीप जाकर, विशेषरूप से चौदह कार्य कभी नहीं करने चाहियें—समीप में मल-मूत्र-त्याग, गंगा जी में आचमन (कुल्ला), बाल-झाड़ना, निर्माल्य छोड़ना, मेल-छुड़ाना, शरीर-मलना, खेल-करना, दान-लेना, रति-क्रिया, दूसरे तीर्थ में अनुराग, दूसरे तीर्थ की प्रशंसा, कपड़ा घोना या छोड़ना, जल-पीटना तथा तैरना ।” तात्पर्य तीर्थ-यात्रा में अत्यन्त सरलता, सादगी तथा श्रद्धापूर्वक रहना चाहिये । जैसी भावना होती है, वैसा ही फल होता है । शास्त्र में कहा भी है :

सन्ने तीर्थं द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ ।

यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ॥

“—मन्त्र, तीर्थ, द्विज, देवता, दैवज्ञ, वैद्य तथा गुरु में जिसकी जैसी भावना होती है, वैसी ही सिद्धि-प्राप्ति होती है।”
विना श्रद्धा-भावना का फल नहीं होता ।

प्रयाग-माहात्म्य

तीर्थराज प्रयाग का बड़ा माहात्म्य है । प्रति वर्ष माघ में स्नान तथा मास पर्यन्त कल्पवास का बहुत फल कहा है । यहां गंगा तथा यमुना का संगम है और गुप्त रूप से सरस्वती का भी सम्मिलन कहा जाता है, इसीसे त्रिवेणी कहते हैं । सरस्वती ज्ञानस्वरूपा, गंगा भक्तिस्वरूपा और यमुना कर्मस्वरूपिणी हैं । इस प्रकार कर्म, भक्ति और ज्ञान का संगम यहाँ है । इसमें अवगाहन करने से सभी कामनायें पूरी होती हैं । ‘सूतसंहिता’ में कहा है :

प्रयागाख्यं महातीर्थं भवरोगस्य भेषजम् ।

भरण्यां कृत्तिकायां तु रोहिण्यां वा विशेषतः ॥

तत्र स्नात्वा रवी मेषे वर्तमाने मुनीश्वराः ।

यथाशक्तिं धनं दत्त्वा विमुक्तो मानवो भवेत् ॥

(सू०सं० १, १३, ११-१२)

“—प्रयाग नामक महातीर्थ है, वह संसाररूपी रोग की ओषधि है । भरणी, कृत्तिका तथा विशेषरूप से रोहिणी नक्षत्र में स्नान कर अथवा मेष राशि में सूर्य के आने पर जो यथाशक्ति धन-दान करता है, हे मुनीश्वरों ! वह मानव मुक्त हो जाता है ।” बट-वृक्ष, भरद्वाज आश्रम आदि अनेक प्राचीन दर्शनीय स्थान यहाँ हैं । प्रयाग में हर बारह वर्ष में ‘कुम्भ-पर्व’ होता है और छः वर्ष में ‘अर्ध-कुम्भ’।

हरिद्वार-माहात्म्य

हरिद्वार हिमालय पर्वत की तलहटी में है । इसे गंगाद्वार, हरद्वार, हरिद्वार या मायापुरी भी कहा जाता है । यही गंगोत्तरी, यमनोत्तरी, केदारनाथ तथा बदरीनारायण का प्रवेश-मार्ग है । इसीसे 'द्वार' कहा जाता है । सब से पहले भागीरथी गंगा मैदान-क्षेत्र में यहीं आई । यहाँ वर्ष भर गंगा का शीतल जल प्रवाहित होता है और सारे देश के श्रद्धालु लोग वर्ष भर यहाँ आते रहते हैं । हरिद्वार में अनेक प्रसिद्ध और पावन स्थान हैं । मायापुरी मोक्षदात्री मानी जाती है । इसका विस्तार कहाँ से कहाँ तक है और कौन-कौन से प्रसिद्ध स्थान हैं, इसका संक्षिप्त परिचय श्री स्वामी लक्ष्येश्वराश्रम जी महाराज ने "मायापुर्यष्टक" में दिया है । वह इस प्रकार है :

वन्दे मायापुरीमाद्यां सर्वसंसारमातरम् ।

मोक्षदासु तृतीया या गंगासौन्दर्यशालिनी ॥१॥

गंगाद्वारं हरद्वारं दक्षयज्ञस्य वेदिका ।

नीलपर्वतमारभ्य चन्द्रभागान्तभूमिका ॥२॥

विल्वकेशः कुशावर्तः सतीकुण्डसमन्विता ।

वीरभद्र हृषीकेश सोमनाथ सुशोभिता ॥३॥

नमामि पावनीं भूमिं पापतापनिवारिणीम् ।

मोक्षदां भोगदां पुण्यां गंगां विख्यात देवताम् ॥४॥

विभूतिं भूतामीशस्य प्रपन्नानां सुपालिनीम् ।

शरणं देहि मे मातः शरणागतवत्सले ॥५॥

सप्तर्षीणां तपोभूमिः सप्तधाराविराजिता ।

सोपानरूपा स्वर्गस्य विदुरादि विमोक्षदा ॥६॥

शतयूपाश्रमेणादौ कुब्जाम्रणे च शोभिताम् ।

मायाकुण्डयुतां वन्दे जनमायानिकृन्तिनीम् ॥७॥

मुमुक्षुभिरनैश्च सेवितां सिद्धसेविताम् ।

कामधेनुं पुरीं पुण्यां मायाख्यां नौम्यहं मुदा ॥८॥

मायापुर्यष्टकमिदं मायाबन्धनमोचकम् ।

मायापुर्यां पठेन्नित्यं स तरेन्मायिकाद्भ्रमात् ॥९॥

“—मैं समस्त संसार की माता श्री मायापुरी की वन्दना करता हूँ । जो मुक्ति-देनेवाली पुरियों में तीसरी है तथा गंगा जी के शृङ्गार, वाली है ॥१॥ यह गंगाद्वार, हरद्वार-नामवाली, दक्षप्रजापति के यज्ञ की वेदी है । नीलपर्वत से चन्द्रभागा नदी तक चार योजन भूमिवाली है ॥२॥ वित्त्वकेश्वर-प्राचीन लिंग, कुशावर्त और सतीत्व-धर्म का स्मारक सतीकुण्ड से भली-भाँति युक्त है । वीरभद्र, हृषीकेश तथा सोमनाथ शंकर से सुशोभित है ॥३॥ जो मोक्षदात्री पवित्र भोग-देनेवाली और पाप-ताप-विनाशिनी है, जिसकी प्रसिद्ध गंगा जी अधिष्ठात्री देवता हैं, उस पावन भूमि मायापुरी को मैं नमन करता हूँ ॥४॥ भगवान् की मुक्ति-भुक्ति विभूतिस्वरूपा और शरणापन्न लोगों को सुखपूर्वक पालन करनेवाली मायापुरी को नमस्कार करता हूँ ।

हे मातः ! आप शरणागत पर प्यार करती हैं, मुझे भी शरण दीजिये ॥५॥ मरीचि आदि सप्त ऋषियों की तपोभूमि, सप्तधारा (सप्तसरोवर) से सुशोभित, स्वर्ग की सीढ़ीरूपवाली और विदुर, धृतराष्ट्र तथा अजामिल को मुक्ति देने वाली है ॥६॥ इसमें प्राचीन समय पुराण प्रसिद्ध शतयूपाश्रम और कुन्जाम्र शोभित था । स्वयम्भू मायाकुण्ड से युक्त और अपने जनों का बन्धन-काटनेवाली की व्रन्दना करता हूँ ॥७॥ अनेक मुमुक्षुओं से सेवित, सिद्ध महापुरुषों से सेवित और समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाली, पुण्यजननी, पावन माया-पुरी को मैं प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम करता हूँ ॥८॥ जो सज्जन माया-बन्धन से मुक्त करनेवाले इस 'मायापुर्यण्टक' का विशेष रूप से माया-पुरी में नित्य पाठ करेंगे, वह माया-रचित भ्रमजाल से मुक्त हो जायेंगे ॥९॥"

‘सूत संहिता’ में भी कहा है :

गंगाद्वारं महातीर्थं सर्वदेवनिषेवितम् ।

तत्र स्नात्वा रवौ मेषे स्थितेऽश्विन्यां मुनीश्वराः॥

यथाशक्ति धनं दत्त्वा श्रद्धया शिवयोगिने ।

उपोष्य सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवो द्विजाः ॥

(सू०सं० १.१३.३-४)

“—हे मुनीश्वरों ! समस्त देवों से सेवित महान् तीर्थ गंगा-द्वार—हरद्वार है । अश्विनी नक्षत्र में मेष के सूर्य स्थित होने पर जो यहाँ स्नान कर, शिवयोगी को श्रद्धापूर्वक, यथाशक्ति धन-दान करता है, हे द्विजों ! वह मनुष्य सम्पूर्ण पापों का परित्याग कर मुक्त हो जाता है ।” यहाँ हर छः वर्ष में ‘अर्द्ध कुम्भ’ और बारह वर्ष में ‘कुम्भ-पर्व’ होता है । इसमें स्नान, दानादि से समस्त पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं ।

तीर्थ-सेवन का फल किसे मिलता है और किसे नहीं

तीर्थ-यात्रा, स्नान, दान, उपवास, व्रत आदि का अधिकार सभी को है। किन्तु जो असंयमी, कामी, क्रोधी, लोभी और परदोष-निन्दक हैं, अश्रद्धालु, अभिमानी तथा दूषित अन्तःकरण वाले हैं, उनको तीर्थ का वास्तविक फल नहीं मिलता। ऐसे मनुष्य तो तीर्थ में स्नान करने की इच्छा भी नहीं करते। 'महाभारत' में कहा है :

नावृती नाकृतात्मा च नाशुचिर्न च तस्करः ।

स्नाति तीर्थेषु कौरव्य न च वक्रमतिर्वरः ।:

(महा०वन० ५५।१०८-१०९)

! “—हे कुरुनन्दन ! जो ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का पालन नहीं करता, जिसने अपने मन को वश में नहीं किया, जो अपवित्र आचार-विचारशील है, चोर है और जिसकी बुद्धि वक्र—उलटी है, वह मनुष्य श्रद्धा न करने के कारण तीर्थों में स्नान नहीं करता।” किन्तु जो श्रद्धावान्, पवित्र, आस्तिक, परोपकारी, इन्द्रियनिग्रही और तपस्वी है, उसे तीर्थ का पूर्ण फल प्राप्त होता है। कहा है :

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।

विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥

प्रतिग्रहादपावृत्तः संतुष्टो येन केनचित् ।

अहंकारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥

अकल्कको निरारम्भो लब्धाहारो जितेन्द्रियः ।

विमुक्तः सर्वपापेभ्यः सतीर्थफलमश्नुते ॥

अक्रोधनश्च राजेन्द्र सत्यशीलो दृढवृत्तः ।

आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते ॥

(महा०वन० ८२।६-१२)

“—जिसके हाथ, पैर और मन अच्छी प्रकार वश में हों यानी मन से वृथा चिन्तन, किसी के लिये अनिष्ट चिन्तन आदि न करता हो, हाथ-पैर व्यर्थ हिलाता-चलाता न हो तथा विद्या—भगवद्भक्ति, तप—शारीरक ईश्वर-निमित्त कष्ट और कीर्ति—सत्कर्म से प्रसिद्ध हो, वही तीर्थ का फल पाता है । जो प्रति ग्रह—संग्रह आदि से रहित तथा जो कुछ अपने पास हो, उससे सन्तुष्ट रहे और जिसमें अहंकार का अभाव हो यानी धन, शरीर, मन, प्रतिष्ठा, उच्च आदि में ‘अहं’ भाव न हो, वही तीर्थ सेवन का फल पाता है । दम्भ, मद आदि दोषों से रहित, कर्तापिन के अहंकार से शून्य, अल्प भोजन करनेवाला, सब इन्द्रियों को अपने वश में करनेवाला और समस्त निषिद्ध—पापकर्मों के न करनेवाला हो, वही तीर्थ का फल पाता है । हे राजेन्द्र ! जो क्रोध न करता हो, सत्यशील हो; व्रत-पालन में दृढ़ हो और समस्त प्राणियों में अपने समान भाव रखता हो, वही वास्तव में तीर्थ का फल प्राप्त करता है ।”

शास्त्रोक्त यज्ञ साधारण मनुष्य नहीं कर सकते । इसे राजा या समृद्धशाली ही कर सकते हैं । क्योंकि इसमें अधिक धन और बहुत सहायकों की आवश्यकता होती है । ऐसी स्थिति में निर्धनी

मनुष्य यज्ञ नहीं कर सकते। यज्ञ के फल से निर्धन वंचित न हो, इसलिये शास्त्रकारों ने उसके लिये भी उपाय कहे हैं। 'महाभारत' में कहा है :

ऋषीणां परमं गुह्यमिदं भरतसत्ताम ।

तीर्थाभिगमनं पुण्यं यज्ञैरपि विशिष्यते ॥

अनुपोष्य त्रिरात्राणि तीर्थान्यनभिगम्य च ।

अदत्त्वा कांचनं गाश्च दरिद्रो नाम जायते ॥

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः ।

द तत् फलमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेन यत् ॥

(महा०वन० ८२।१७-१९)

“—भरतश्रेष्ठ ! यह ऋषियों का परम गोपनीय रहस्य है कि तीर्थ-यात्रा अत्यन्त पुण्यकारक है और यज्ञों से भी बढ़कर है। मनुष्य दरिद्र—निर्धन इसी लिये होता है कि वह तीर्थों में तीन दिन उपवास नहीं करता, तीर्थों की यात्रा नहीं करता और सुवर्ण-दान, गो-दान आदि नहीं करता। मनुष्य तीर्थ-यात्रा से जो फल पाता है, उसे बहुत दक्षिणावाले अग्निष्टोम आदि यज्ञों-द्वारा यजन कर भी नहीं पा सकता।” विधिपूर्वक और नियम से तीर्थ-सेवन करनेवाला व्यक्ति जिस फल को पाता है, उसे यज्ञ-द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता। तीर्थ में तीक्ष्ण रात्रि या कमसे कम एक रात्रि उपवास करना चाहिये। गंगा आदि में तीन बार गोता लगाकर स्नान करें, किन्तु शरीर का सैल गंगा में न छुड़ावे। फिर ब्राह्मण को यथाशक्ति दान

हैं । व्यर्थ मिथ्या भाषण, निन्दा, उपहास, जुआँ, चोरी आदि से दूर रहना चाहिये । सब समय साधु, महात्मा, सत्संग, कथा, कीर्तन आदि में व्यतीत करना चाहिये । काम क्रोधादि का परित्याग भी करना चाहिये, तभी वास्तविक फल होता है । कहाँ भी है :

कामं क्रोधं च लोभं च यो जित्वा तीर्थमावसेत् ।

न तेन किञ्चिन्न प्राप्तं तीर्थाभिगमनाद् भवेत् ॥

(महा०अनु० २५।६५)

“—जो काम, क्रोध तथा लोभ को जीत कर तीर्थों में स्नान करता है । उसे तीर्थ-यात्रा के पुण्य से कोई वस्तु दुर्लभ नहीं रहती ।”

कभी-कभी कोई यह सोचने लगते हैं कि हम बड़े पापी हैं, जीवन में हमने कोई अच्छा कर्म नहीं किया । इस लिये तीर्थ-यात्रा से क्या लाभ होगा ? उन्हें ऐसा न सोचना चाहिये, क्योंकि तीर्थों की बड़ी महिमा है । वह बड़े से बड़े पापों को भी भस्म कर देते हैं । यही कहा है :

यद्यकार्यशतं कृत्वा कृतं गंगाभिषेचनम् ।

सर्वं तत् तस्य गंगाम्भो दहत्यग्निरिवेन्धनम् ॥

सर्वं कृतयुगे पुण्यं त्रेतायां पुष्करं स्मृतम् ।

द्वापरेश्च कुरुक्षेत्रं गंगा कलियुगे स्मृता ॥

(महा०वन० ८५।८६-८७)

“—जैसे अग्नि ईंधन को जला देती है, वैसे ही सैकड़ों निषिद्ध—पाप कर्म करके भी यदि गंगा-स्नान किया जाय, तो उसका गंगा-जल उन सब पापों को भस्म कर देता है। सत्ययुग में सभी तीर्थ पुण्यदायक होते हैं। त्रेता में पुष्कर तीर्थ का महत्व है। द्वापर में कुरुक्षेत्र का माहात्म्य है, किन्तु कलियुग में गंगा जी की अधिक महिमा कही गई है।” गंगा जी का नाम लेने मात्र से वह समस्त पाप नष्ट कर देती हैं। दर्शन करने पर वह कल्याण-प्रदान करती हैं, स्नान और पान करने पर वह मनुष्य की सात पीढ़ियों को पावन बना देती हैं—

पुनाति कीर्तिता पापं दृष्ट्वा भद्रं प्रयच्छति ।

अवगाढा च पीता च पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥

(महा०वन० ८५।६३)

कुम्भ-पर्क पर शिविर

कुम्भ के अवसर पर प्रयाग तथा हरिद्वार में “दण्डी स्वामी भूमानन्द तीर्थ न्यास संस्थानम्” सप्तसरोवर मार्ग हरिद्वार की ओर से विशेष शिविर का आयोजन किया जाता है। इसमें दण्डी संन्यासी, ब्रह्मचारी, सदाचारसम्पन्न ब्राह्मण और भक्तजन निवास करते हैं। नियमित रूप से “अन्न-क्षेत्र” चलता है। श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ महात्माओं के उपदेश, श्रीमद्भागवत-कथा और भगवन्नाम-कीर्तन आदि का कार्यक्रम होता है।





यदि आप अपने तथा परिवार के लिये चाहते हैं—

सुख और समृद्धि

तो भक्ति, तप, दान तथा सदाचार का पालन करिये

- भक्ति—सर्वेश्वर, अन्तर्यामी भगवान् का श्रद्धापूर्वक कायिक, वाचिक तथा मानसिक पूजन, पाठ, जप, ध्यानादि से सेवा करना 'भक्ति' है। शिव, राम, कुष्ण, विष्णु, देवी, गणेश आदि किसी में भी मन को एकाग्र करिये। इसी प्रकार भगवद्भक्तों का सत्संग और सेवन करना भी 'भक्ति' है।
- तप— ईश्वर-प्राप्ति के लिये शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक श्रम करना 'तप' है। कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि व्रत, उपवास, तीर्थ-यात्रा आदि भी 'तप' है।
- सदाचार—वेद, स्मृति, पुराण, इतिहास, सूत्र आदि सद्ग्रन्थों में बतलाये हुये वर्णाश्रम धर्म का आचरण करना 'सदाचार' है। अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल संयमित जीवन व्यतीत करना 'सदाचार' कहा जाता है।
- दान— स्वत्व का सत्पात्र में परित्याग 'दान' है। धर्मपूर्वक उपाजित भूमि, अन्न, सुवर्ण, वस्त्र, आभूषण, तथा धन आदि अच्छे उद्देश्य से श्रद्धापूर्वक सत्पात्र ब्राह्मण को देना 'दान' है। "दानमेकं कलौ युगे" के अनुसार कलियुग में एक दान ही सर्वश्रेष्ठ साधन है। निश्चय ही इससे लौकिक-पारलौकिक सुख-समृद्धि और परमानन्दस्वरूप ईश्वर की प्राप्ति होगी।

प्रकाशक— "दण्डी स्वामी भूमानन्द तीर्थ न्यास संस्थानम्" भूमानिकेतन, सप्तसरोवर मार्ग, हरिद्वार।
